कश्मीर में नाटक लेखन परम्परा

❑ मूल० : मोती लाल क्यूम

अनु० : डॉ. सत्यपाल श्रीवत्स

कश्मीर में ईस्वी की दूसरी शताब्दी से लेकर बारहवीं शताब्दी तक संस्कृत नाटकों के सृजन की बड़ी गौरवशाली और समृद्ध परम्परा रही है। इसके साथ-साथ कई नाट्याचार्यों ने उनका समय-समय पर मंचन भी करवाया और कई विद्वानों ने भरत के नाट्यशास्त्र की टीकाएं और भाष्य भी लिखे। कल्हण के अनुसार द्वितीय शताब्दी में चन्द्रक कवि जिसे कल्हण महाभारत के प्रणेता महर्षि व्यास का अवतार मानता था, ने कुछ संस्कृत नाटक रचे थे जो समाज के हर वर्ग के लिए उपयोगी थे। कल्हण की राजतरङ्गिणी की दूसरी तरङ्ग के 19 वें श्लोक के अनुसार दशम शताब्दी में आचार्य अभिनव गुप्त द्वारा इस विषय में रचित अभिनव भारती सबसे उत्तम मानी जाती है।

आचार्य अभिनव गुप्त के अनुसार चन्द्रक कवि के सभी रूपकों में वीर और रौद्ररस तो अङ्गी हैं जबकि शेष सभी रस अङ्ग के रूप में अभिव्यक्त हैं। उस महान नाटककार के नाटकों में से कुछ श्लोक कश्मीर के प्रसिद्ध आचार्य क्षेमेन्द्र ने अपनी टीकाओं में उद्धृत किए हुए हैं। यह नियति की बहुत ही दुखद विड़म्बना है कि चन्द्रक द्वारा रचित नाटकों में से आज एक भी उपलब्ध नहीं है।

कश्मीर का यशोवर्मन नामक राजा भी बड़ा प्रसिद्ध नाटककार था। इसी प्रकार अवन्ती वर्मा के राज्यकाल में शिवस्वामी नामक कवि भी बड़ा कुशल नाटककार था। कई महाकाव्यों की रचनाओं के अतिरिक्त उसने प्रकरण (नाटक विधा का एक भेद) तथा लघु नाटिकाएं भी रची थीं। श्यामलक नामक कवि ने पदातिक नामक 'भाण' की रचना की थी। उसका समय ईसा की पांचवीं शताब्दी माना जाता है। भाण नाटक में हास्य और व्यंग्य की प्रधानता रहती है। नाटक की इस विधा में केवल एक ही पात्र होता है, जो प्रश्नों और उत्तरों की शैली में अभिनय करता है। आज की भाषा में भाण नाटक को एक पात्री नाटक कहते हैं। भाण नाटक का अभिनय करने वाला

अपनी कला में सर्वतोमुखी प्रतिभा का स्वामी होता है। वह अपने अभिनय द्वारा जो कुछ भी प्रदर्शित करता है। उससे वह अपने दर्शकों को पूर्णतया सावधान करता रहता है। क्योंकि यह एक पात्री नाटक होता है, इसलिए इसमें अभिनय भी उसी के अनुसार होता है। आज तक हमें संस्कृत के केवल चार भाण नाटक ही उपलब्ध हुए हैं जिनका सामूहिक नाम चतुर्वाणी है। इनमें पदातिक सर्वप्रथम माना जाता है।

क्षेमेन्द्र (990-1055 ई०) जिसे जनसाधारण का कवि माना जाता है, ने ये तीन नाटक रचे थे- 1. ललित रत्न माला (जिसकी कथावस्तु राजा उदयन से सम्बन्धित है और जिसका स्रोत बृहत्कथा है), 2. कनक जानकी (इसका आधार वाल्मीकि रामायण की एक घटना है), 3. चित्रभारत (इसका आधार महाभारत है) दुर्भाग्य से आज ये तीनों नाटक उपलब्ध नहीं हैं। अपनी अन्यतम रचना कवि कण्ठाभरण में क्षेमेन्द्र अपने इन नाटकों के कुछ श्लोक उद्धृत भी करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि ये तीनों उपरूपक (नाटिकाएं) की श्रेणी में आते हैं। इनमें शृङ्गार और वीर रस प्रधान हैं।

विक्रमाङ्क देव चरितम् नामक प्रसिद्ध ऐतिहासिक काव्य का रचयिता विल्हण (1028-1090 ई०) भी कश्मीर का एक प्रख्यात कवि था। उसने भी 'कर्णसुन्दरी' नामक चार अङ्कों वाली नाटिका रची थी। इस नाटिका पर कालिदास के मालविकाग्निमित्रम् तथा हर्षवर्द्धन की रत्नावली नाटिका का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। इसमें शृङ्गार रस की प्रधानता है। 'प्रभावती प्रद्युम्न' नामक एक और संस्कृत नाटक छपने के बाद ही प्रकाश में आया था। परन्तु प्रो० पृथिवी नाथ पुष्प के बाद रिसर्च और पब्लिकेशन विभाग में कोई योग्य निदेशक न आने के कारण यह नाटक भी विद्वानों के सामने नहीं आया और संस्कृत तथा शारदा लिपि में लिखित पाण्डुलिपियों के भावी प्रकाशन आदि का काम भी एक प्रकार से ठप्प ही हो गया।

कश्मीरी महिलाओं की प्रशंसा करता हुआ कवि विल्हण कहता है कि वे नाट्य प्रयोगों में स्वर्ग की रम्भा, चित्रलेखा तथा उर्वशी को भी पीछे छोड़ने की क्षमता रखती हैं। यद्यपि कवि विह्लण के इस कथन में अतिशयोक्ति हो, परन्तु इससे यह तथ्य तो स्वतः प्रमाणित हो ही जाता है कि उस समय कश्मीरी कलाकार महिलाएं नाट्य प्रयोग में अपना सानी नहीं रखतीं थीं।

सातवीं शताब्दी से पहले रचित विष्णु धर्मोत्तर पुराण और नीलमत पुराण दोनों ही कश्मीर और उसके आसपास के राज्यों की सामाजिक और सांस्कृतिक अवस्था के बारे में बड़ी महत्त्वपूर्ण जानकारी देते हैं। अपने एक अध्याय में विष्णु धर्मोत्तर पुराण

ललित कलाओं, रूपकों के दस भेदों नृत्य की अनेक मुद्राओं, संगीत के विविध प्रकारों तथा साहित्य में सौन्दर्य की महती उपयोगिता आदि पर पर्याप्त प्रकाश डालता है। एक विश्वकोश सदृश यह रचना शिक्षा एवं ज्ञान की लगभग सभी शाखाओं पर प्रकाश डालने के कारण अतीव महत्त्वपूर्ण स्रोत का काम करती है। इसी प्रकार कश्मीरी समाज के विविध पक्षों के विषय में विस्तृत जानकारी उपलब्ध कराने के कारण नीलमत पुराण भी एक महत्त्वपूर्ण कृति है। इसके अनुसार कश्मीर में कोई भी उत्सव नृत्य-संगीत आदि सांस्कृतिक कार्यक्रमों के बिना अधूरा ही समझा जाता है। इससे यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि कश्मीर के लोग विविध कलाओं, रंगमंचीय कार्यक्रमों के साथ जुड़े कलाकारों को हर प्रकार का प्रोत्साहन और संरक्षण ही नहीं देते थे, अपितु धन, वस्त्र एवं प्रेक्षाधन देकर उनका सम्मान भी किया करते थे। परिणामतः नाटकों के कुछ प्रकार रचे भी जाते थे और विशेष अवसरों पर उनका मंचन भी किया जाता था। विशेषकर बुद्ध पूर्णिमा, श्रीकृष्ण जन्माष्टमी तथा भगवान शिव से सम्बन्धित त्योहारों पर तो कुछ विशेष नाटकों का विशेष रूप से मंचन किया जाता था। इसलिए कहा जा सकता है कि जातक कथाएं, शिव लीलाएं तथा बाद में श्रीकृष्ण तथा राम लीलाएं भी कुछ विशेष अवसरों पर मंचित की जाती थीं। क्योंकि इस प्रकार के सामाजिक या धार्मिक उत्सव लोगों द्वारा ही आयोजित किए जाते थे, अतः लेखक भी ऐसे अवसरों के स्वभावनुसार ही अपने नाटकों की रचना किया करते थे, परन्तु वे अपने नाटकों की पाण्डुलिपियों को इस आशा से सम्भाल कर नहीं रखते थे कि अग्रिम वर्ष फिर नये नाटक रचने ही हैं। आश्चर्य है कि यह परम्परा किसी न किसी रूप में अब भी जीवित है। जब कोई लेखक अपना नाटक लिखता है तो वह प्रायः उसे 'रफ' रूप में इसलिए रखता है ताकि कलाकार उसके मंचन से पहले उसमें अपने ढंग से स्वयं सुधार कर लें। जो नाटक प्रसिद्ध कवियों या लेखकों द्वारा लिखे जाते थे वे पूर्णतया भरत के नाट्य-शास्त्र के नियमों के अनुसार ही लिखे जाते थे पर अब वर्तमान परिस्थितियों को ध्यानगत करते हुए नाट्यविधा में नये प्रयोग भी किए जाते हैं। जयन्तभट्ट (850-902ई०) ने जो 'आगमादम्बरम्' नामक नाटक लिखा था। वह पूर्णतया दार्शनिक पद्धति पर आधारित होने के कारण भरत के नाट्य शास्त्र के नियमों के अनुसार नहीं है।

उक्त नाटक यद्यपि चार अङ्कों का है, परन्तु तो भी इसे भरत के नाट्य-शास्त्र के नियमों पर आधारित रूपक नहीं माना जा सकता। इस नाटक में उन विभिन्न दार्शनिक प्रस्थानों का दिग्दर्शन करवाया गया है। जिनका राजा शङ्कर वर्मन के राज्यकाल में कश्मीर घाटी में बहुत अधिक प्रचार था। यह नाटक यद्यपि मुख्यतः श्रीनगर के परिवेश पर आधारित है, परन्तु इसका चौथा अङ्क रामस्वामिन् मन्दिर के परिवेश पर

आधारित है। इस नाटक में जिन पांच दार्शनिक प्रस्थानों की विचार धाराओं का बड़े नाटकीय ढंग से दिग्दर्शन कराया गया है, वे इस प्रकार हैं–बौद्ध दर्शन (अर्हत), चार्वाक, मीमांसा, न्याय (शैवदर्शन सहित) तथा आगम (पञ्चरात्र)। इससे निश्चय ही जयन्त भट्ट की विभिन्न दार्शनिक प्रस्थानों में गहरी पैठ का पता चलता है।

इस नाटक की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसका नायक न तो कोई राजा है, न कोई देवता और न कोई प्रख्यात व्यक्ति, अपितु एक स्नातक जिसने अपना अध्ययन सधः सम्पन्न किया हो और फिर यह भी विचारणीय है कि इस नाटक में न कोई नायिका ही है और न ही विदूषक। स्पष्ट है कि इस नाटक में भरत के नाट्यशास्त्र के कई नियमों का पालन नहीं किया गया है। प्रारम्भ में सूत्रधार सन्देह व्यक्त करता है कि सम्भव है कि नाट्य-कला के मर्मज्ञ इस नाटक में नाट्य-कला की कमियों का उल्लेख करें परन्तु क्योंकि यह नाटक नाटक के रचयिता जयन्तभट्ट के शिष्यों द्वारा उसके पास मंचन के लिए लाया गया है और फिर साथ ही इसे देखने के लिए दर्शक भी न्याय-शास्त्र के मर्मज्ञ हैं, अतैव इसका आज मंचन किया जा रहा है।

राजा कलश के राज्यकाल में उपङ्ग गीतों को तो बहुत अधिक प्रोत्साहन मिला था, जबकि नाट्य-शास्त्र रचना और नाट्य-मंचन की ओर अपेक्षाकृत कम ध्यान दिया गया था। हां, उस समय कुछ प्रबन्ध-काव्य और चरित-काव्य अवश्य रचे गए थे। सम्भवतः उस काल में पात्रों को मंच के ऊपर बुलाकर उन्हें मात्र अपनी संगीत-कला का प्रदर्शन करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता था।

जैन-उल-अब्दीन बडशाह के राज्यकाल में कश्मीरी भाषा में रंगमंच के लिए उत्तसोम के द्वारा एक चरित रचा गया था। श्रीवर अपनी राजतरङ्गिणी में लिखते हैं "योधभट्ट कश्मीरी भाषा का कवि है, जिसने 'जैन प्रकाश नामक' नाटक लिखा है, जो शीशे के समान साफ-सुथरा है। इस नाटक में बादशाह के शासन प्रबन्ध के बारे में भी विस्तार से चर्चा की गई है।

बारहवीं शताब्दी के बाद कश्मीर में पहले जैसी स्थिति नहीं रही। उस अवधि में लगातार होने वाले बाहरी आक्रमणों के परिणाम स्वरूप बलपूर्वक धर्म परिवर्तन, नदियों में आने वाली बाढ़ों से, दंगे-फसादों से, अग्निकाण्डों से और संक्रामक रोगों के फैलने से कश्मीर के लोगों को अनेक कष्टों का सामना करना पड़ा। इतना ही नहीं आपत्तियों से भरे उन दिनों कश्मीर में अमूल्य ग्रन्थों और पाण्डुलिपियों की भारी हानि हुई। परिणामतः वहां नाट्य-रचना की परम्परा पर भी वज्राघात हुआ।

परन्तु इसके बावजूद एक सुखद स्थिति यह रही कि 'भण्डनाट्यम्' नाम से प्रसिद्ध मंचीय लोक-नाट्य परम्परा यथावत् चलती ही रही। इस परम्परा को हम 'भण्डपाथर' नाम से जानते हैं। मुस्लिम राजाओं के शासन काल में भी 'भण्ड' लोक-मनोरजंन के अति प्रसिद्ध साधन थे। वे घुमक्कड़ कलाकार केवल कश्मीर घाटी में ही अपनी कलाओं का प्रदर्शन नहीं करते थे, अपितु पीर पञ्चाल पर्वत को पार करके जम्मू, हिमाचल प्रदेश, पंजाब तथा भारत के कई अन्य प्रदेशों में जाकर भी अपनी हास्य-व्यंग्य से ओत-प्रोत कलाओं का प्रदर्शन करके लोगों का मनोरंजन किया करते थे।

II

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में घाटी में नवीन शैक्षणिक संस्थाओं के स्थापित होने से आधुनिक शिक्षा के प्रसार से महाविद्यालयों तथा विद्यालयों में जब छात्रों की कलाओं तथा सांस्कृतिक कार्यक्रमों के प्रति भी रुचि बढ़ाई जाने लगी तो अपनी संस्थाओं में छात्रों द्वारा वर्षावधि में कम-से-कम एक बार तो नाटकों का मंचन अवश्य किया जाने लगा। इससे विशेष रूप से नाट्य-कला के प्रति जागरूकता उत्पन्न होनी स्वाभाविक थी। 1924-25 ई० में जब महाराजा हरिसिंह का राज्याभिषेक उत्सव आयोजित किया जा रहा था तो पुरानी मण्डी के खुले मैदान में जनसाधारण के मनोरंजनार्थ नाटकों का मंचन करवाने के लिए मुंबई से एलफ्रेड कम्पनी को विशेष रूप से आमन्त्रित किया गया था। वहां नाटक का सफल मंचन देखने के बाद तत्कालीन महाराजा प्रतापसिंह ने इच्छा प्रकट की थी कि जम्मू और श्रीनगर (कश्मीर)में भी लोगों के मनोरंजनार्थ नाटकों का मंचन करने के लिए इस प्रकार की स्थानीय कम्पनियां तैयार करनी चाहिए। उसके तुरन्त बाद एक अवैतनिक नाट्य मण्डली अमेच्योर ड्रामेटिक कम्पनी की स्थापना की गई थी। जिसके संरक्षक स्वयं महाराजा प्रतापसिंह थे। इस कम्पनी ने सबसे पहले आगा हश्र कश्मीरी द्वारा लिखित नाटक का सफलतापूर्वक मंचन किया था। उसके एक वर्ष बाद बेताब तथा अन्य उर्दू नाटककारों के नाटकों का भी श्रीनगर तथा जम्मू में मंचन किया गया। पारसी शैली में लिखे गए नाटक-जैसे बिल्व मंगल, सूरदास, महाभारत, बेवफा-कातिल, खूबसूरत बाला, यहूदी की लड़की, वीर अभिमन्यु, अछूत कन्या और दानवीर कर्ण आदि लिखे भी गए थे और साथ-ही-साथ मंचित भी किए गए थे। यह क्रम सन् 1937 ई० तक चलता रहा। परन्तु कुछ समय के बाद वह अवैतनिक नाटक क्लब सरकारी अधिकारियों एवं वेतन भोगी कलाकारों के अधिकार में आ गया था। उन्हीं दिनों कुछ और रंगमंचीय कम्पनियां एवं क्लब अस्तित्व में आईं थीं। ये क्लब कुछ उत्साही युवाकलाकारों द्वारा स्थापित किए गए थे, जिन्होंने श्रीनगर के अतिरिक्त

बारामूला तथा अनन्तनाग में बेताब एवं आगा हश्र कश्मीरी के नाटकों का समय-समय सफल मंचन किया था। 1929 ई० नन्दलाल कौल 'नाना' ने पारसी शैली में 'सतुच कहवुट' नामक नाटक की रचना की थी। जिसकी भाषा कश्मीरी थी। उस नाटक का आधार या प्रेरणास्रोत राजा हरिश्चन्द्र की प्रसिद्ध पौराणिक कथा था। उस नाटक का मंचन पहली बार 1930 ई० में श्रीनगर में किया गया था।

नाना कौल ने दईलोल, रामुनराज, प्रह्लादभगत आदि कई नाटकों की रचना भी की थी। जी. एम. डी. सूफी के अनुसार ये सभी नाटक प्रकाशित भी हो चुके हैं। इन सभी में 'सतुच कहवुट' नाटक इतना अधिक लोकप्रिय हो गया था कि उसका मंचन कई रंगकर्मी दलों द्वारा 1955 ई० तक लगातार किया जाता रहा। इसके बाद दीनानाथ 'मदरेर' तथा सुदामा कौल प्रसिद्ध नाटककारों के रूप में सामने आए, जिन्होंने यद्यपि पारसी शैली के आधार पर अनेक नाटक रचे परन्तु उनमें से एक भी प्रकाशित नहीं हो सका। श्री जे. एन. बाली ने हब्बा खातून के विषय में 'जून' शीर्षक से एक नाटक लिखा था, जो 1950 ई० में प्रकाशित हुआ था। श्री तारा चन्द 'विस्मिल' नामक कवि नाटककार ने भी कश्मीरी भाषा में 'सतुज-वथ' शीर्षक से जो नाटक लिखा था वह स्थानीय रंगकर्मियों द्वारा कई बार मंचित किया गया था। यह नाटक प्रकाशित भी हो गया था। तदनन्तर पारसी शैली के अनुसरण पर जो पौराणिक कथाओं पर आधारित कश्मीरी भाषा में नाटक लिखे गये थे। उनमें से कुछ प्रसिद्ध इस प्रकार है–प्रह्लाद, सत्यवान- सावित्री, श्रीकृष्ण जन्म, शङ्कर-पार्वती, तपस्या और शिवलग्न। ये नाटक समय-समय पर रघुनाथ मन्दिर, फतेहकदल, चोटा बाज़ार, रैणावाड़ी, शीतलनाथ, बारामूला, अनन्तनाग, मटन और छत्ताबल में 1955 ई० तक मंचित किए गये थे।

गत शताब्दी के पहले चालीस वर्षों में कुछ अवैतनिक रंगकर्मी गिरोह आगे आए जिन्होंने क्रमशः एक के बाद दूसरे सामाजिक विषयों पर कई नाटक लिखे और मंचित भी किए। श्री त्रिलोकी नाथ वैष्णवी 'रफ़ीक' ने कश्मीरी भाषा में दो नाटक लिखे जिनके शीर्षक हिन्दी भाषा के अनुसार थे। जैसे चित्र और समाज की भूल। 'विधवा' एक ऐसा नाटक था जो भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति से पहले लिखा गया था। यह सर्वप्रथम श्री मोहन लाल ऐमा के निर्देशन में बड़ी सफलता से मंचित भी हुआ था। श्री ऐमा ने विधवा के प्रतिपक्ष में मुख्य भूमिका भी स्वयं निभाई थी एवं इसके लिए संगीत भी स्वयं दिया था। इस नाटक के गीत मुस्लिम कवि ''आसी'' ने लिखे थे।

श्री सर्वानन्द भान मुख्यतः खेलों और सांस्कृतिक विषयों में रुचि लेने वाले व्यक्ति थे। वह सदा युवा कवियों और लेखकों को किसी भी ज्वलंत सामाजिक

विषय पर सोचने और लिखने के लिए प्रोत्साहित किया करते थे ताकि बाद में उनके लेखों को नाटक का रूप दिया जा सके। 'औलाद' तथा कुछ अन्य नाटक उन्हीं के पथ-प्रदर्शन में लिखे और मञ्चित किये गए थे। उन दिनों नाटक लेखन और उनका मंचन लेखकों के सामूहिक प्रयास का प्रतिफल हुआ करता था। अर्थात् कवि, लेखक, संगीतज्ञ, रंगकर्मी (कलाकार) तथा उत्साही सहयोगी सभी मिलकर काम किया करते थे, जो एक सुखद स्थिति थी। पारसी और उर्दू नाटकों की धमाकेदार और रक्तपात वाली शैली के स्थान पर कश्मीरी नाटककारों की शैली में लिखे गए वार्तालापों के गद्य में बड़ी सरलता तथा स्वाभाविकता थी। इसके अतिरिक्त उन दिनों नाटकों के लिए लिखे गए गीत भी प्रसिद्ध फिल्मी गीतों की तर्ज पर हुआ करते थे। मंजी म्योर (विवाह सम्बन्ध पक्के करवाने के लिए मध्यस्थ की भूमिका निभाने वाला) की भूमिका मुख्य रूप से शहीद टी. एन. टप्पलू, स्व० एस. एन. सुम्बली तथा पद्म श्री पुष्कर भान निभाया करते थे।

1947 ई० में कबालियों के आक्रमण के बाद कुछ प्रसिद्ध कवि, लेखक, कलाकार और रंगकर्मी संस्कृति महाज़ पर एकत्रित होकर अपने नाटकों और गीतों के माध्यम से स्थानीय समस्यायों पर विचार करने लगे थे। रंगमंच पर प्रस्तुत करने के लिए कुछ कामचलाऊ नाटक भी लिखे गए थे। यद्यपि बाद में रंगमंच के अनुसार उनमें सुधार किया गया था। बाद में संस्कृति महाज़ को सांस्कृतिक सम्मेलन नाम दिया गया था और प्रगतिवादी विचारधारा की प्रवृत्तिओं को प्रकाश में लाने पर बल देने के साथ-साथ युवा कलाकारों को रंगमंच के लिए प्रोत्साहित करने के साथ-साथ स्थानीय समस्यायों को भी उजागर करने के लिए जन-रंगमंच को बढ़ावा देने का प्रयास किया गया। खुले रंगमंचों की प्रस्तुति मुख्यतः लघुगीतों द्वारा ही की जाती थी। परिणामतः अनेक कलाकार उस सम्मेलन के साथ आकर जुड़ते गए। जिससे उन्हें आकाशवाणी कश्मीर में नौकरी प्राप्त करने में भी लाभ हुआ। यद्यपि इससे रंगमंच के लिए लिखने के लिए प्रोत्साहन तो मिला परन्तु वह केवल अत्यल्पकाल के लिए ही था।

1953 ई० में श्री दीनानाथ नादिम ने अपना पहला कश्मीरी संगीत नाटक 'बोम्बुर यम्बरज़ल' जो उसी वर्ष नीडोज़ होटल और एस. पी. कॉलेज में मञ्चित हुआ था। 1956 ई० में उन्होंने 'हीमल नगिराई' शीर्षक से एक संगीत नाटक नूर मोहम्मद रोशन के साथ मिलकर लिखा था और जिसका मंचन हज़ूरी बाग में खुले मंच की पद्धति से किया गया था।

उस खुले मंच का निर्माण जश्न-ए-कश्मीर कमेटी द्वारा इसी उद्देश्य से किया गया था। इन दोनों नाटकों का मंच निर्देशन श्री मोहन लाल ऐमा ने किया था। उसने

उन संगीत-नाटकों के लिए जो गीत लिखे थे वे आज भी गहन रुचि के साथ गाए और सुने जाते हैं।

उन्हीं दिनों तीन और कश्मीरी नाटक अली मोहम्मद लोन, अमीन कामिल तथा नूर मोहम्मद रोशन द्वारा रचे गए थे। जिनका प्रकाशन जम्मू-कश्मीर के सूचना विभाग द्वारा किया गया था। इन नाटकों की विषय-वस्तु थी, नदियों की बाढ़, उनसे होने वाले दुष्प्रभाव और तबाही तथा लोगों के सक्रिय सहयोग से अली मोहम्मद लोन द्वारा लिखित 'बिज़ छि सॉन्य' का मंचन सांस्कृतिक सम्मेलन द्वारा राज्य सरकार के आर्थिक सहयोग से किया गया था। खेद है कि 1960 ई० तक कुछ इने-गिने लेखक ही मंच के लिए लिखने वाले रह गए थे। परन्तु 1962 ई० में टैगोर भवन के निर्माण से सारा परिदृश्य ही बदल गया था। इसके साथ ही रंगमंच के अग्रिमभाग में आमूल चूल परिवर्तन करके उसे आधुनिक सुविधाओं से सम्पन्न कर दिया गया था। इससे कुछ पहले 1958 ई० में राजकीय कला, संस्कृति और भाषा अकैडमी की स्थापना भी हो चुकी थी। इसका मुख्य उद्देश्य यद्यपि राज्य की कलाओं, संस्कृति और भाषाओं को प्रोत्साहन देना था, पर न जाने क्यों 1964 ई० तक राज्य में रंगमंचीय गतिविधियों में कुछ ढील अवश्य आ गई थी। हां, जब सरकारी प्रोत्साहन से जम्मू-कश्मीर राज्य में वार्षिक नाटक प्रतियोगिताओं का आयोजन किया जाने लगा तो 1970 ई० के प्रारम्भ से ही राज्य की उक्त अकैडमी ने भी नाट्य लेखन और नाट्य कार्यशालाओं का आयोजन करना आरम्भ कर दिया था, जिससे इस विधा में फिर से गतिशीलता एवं सक्रियता आई। परिणामत: अधिक संख्या में नाटककार आगे आए और उनके नाटकों का टैगोर भवन में सफलता पूर्वक मंचन भी किया गया। इस प्रकार टैगोर भवन स्वत: ही सांस्कृतिक गतिविधियों का केन्द्र बन गया।

इसके साथ ही अली मुहम्मद लोन और पुष्कर भान ने आकाशवाणी कश्मीर, श्रीनगर के लिए निरन्तर रेडियो नाटक लिखने आरम्भ कर दिये। अली मोहम्मद लोन ने पहले कुछ रूसी नाटकों का उर्दू में भावानुवाद किया और तदनन्तर कश्मीरी भाषा में भी किया। पहले उन्होंने यह कार्य आकाशवाणी के लिए किया और बाद में रंगमंच के लिए 'विज़ छि सॉन्य' के बाद उसने 'सुया' शीर्षक से उर्दू में रेडियो नाटक लिखा। बाद में उसे कश्मीरी भाषा में एक सम्पूर्ण रंगमंचीय नाटक का रूप दिया। उस के ''तक़दीर साज़'' नाटक में ''फ्री थिंकर्स सोसाइटी'' के सदस्य वस्तुत: अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए तथा दूसरे शब्दों में अपनी निजी अभिलाषाओं की पूर्ति के लिए तथा कथित स्वतन्त्र विचारधारा रखने वालों का खूब भण्डा फोड़ा है। सुया के शीर्षक से ही स्पष्ट हो जाता है कि यह एक ऐतिहासिक नाटक है। इस

में सूत्रधार एक सहायक पात्र है। उसका कश्मीरी भाषा में तीसरा नाटक है 'दुर्लभ पण्डित' यह एक चरित्रनाटक है।

पुष्कर भान ने बेकारी की समस्या को उजागर करने के लिए कई नाटक लिखे। उनका 'हीरो-मचामा' शीर्षक नाटक बड़ा चर्चित रहा है। इसमें बेकारी की समस्या से ग्रस्त युवक चित्रित किया गया है। जो अपनी माता की सेवा की भावना मन में संजोए हुए है, पर उसकी वह अभिलाषा मात्र काल्पनिक स्वप्न ही बनी रहती है। क्योंकि वह जीविका प्राप्त करने की अभिलाषा कभी पूर्ण होती हुई नहीं देखता है, अत: निराश हो जाता है। पुष्कर भान का ''हीरो मचामा'' एक ऐसा नाटक था जिसका कई बार सफल मंचन हुआ था। अभिनव भारती द्वारा तो इसका लगातार पच्चीस रातों तक मंचन किया गया था।

पुष्कर नाथ भान ने सोमनाथ साधु के साथ मिलकर भी अनेक नाटक लिखे थे, जिनमें ''च़पाथ'' और 'ग्राण्ड रिहर्सल' अति प्रसिद्ध हैं। हास्य-व्यंग्य के अतिरिक्त इन नाटकों का विषय सामाजिक समस्याएं तथा सुधारवाद भी था।

सजूद सैलानी भी आकाशवाणी और रंगमंच के लिए एक साथ लिखता रहा है। इसके 'शिहुल नार, रात करील, गतुरेन्यु, रोपयी रूड़, कज़ॅय रात, गाशि तारुव और वुतर बुन्युल' नाटक रंगमंच की दृष्टि से अत्यन्त सफल माने जाते हैं क्योंकि उनमें कल्पना, हास्य-व्यंग्य तथा उत्तेजना का बड़ा अदभुत समन्वय है।

अवतार कृष्ण रैहबर वास्तव में तो कहानीकार है परन्तु उसने पहले आकाशवाणी के लिए रूपक लिखे और फिर उन्हें रंगमंचीय नाटकों का रूप देकर अपनी सराहनीय नाट्य-कला का परिचय देकर सभी को आश्चर्यचकित कर दिया। उसके रूपकों में समाज की ज्वलन्त समस्याएं उजागर की गई हैं। औलाद, तलाश, वोला हरीश आदि उसके प्रसिद्ध नाटक हैं। परन्तु आश्चर्य है कि वह अब तक अपने नाटकों का एक भी संग्रह प्रकाशित नहीं कर सका है।

प्रो. हरिकृष्ण कौल का 'येली वत्तन खुर छु यिवन' आजकल के पारिवारिक जीवन में टकराव का चित्रण करता है। यह बड़ा ही प्रसिद्ध नाटक है। उनका दूसरा नाटक 'दस्तार' हास्य-व्यंग्य पर आधरित है। उनका तीसरा नाटक 'नाटुक करीब बन्द' एक प्रयोगात्मक नाटक है।

भाण्ड कलाकार मोहम्मद सुब्भान भगत ने 'तकदीर', 'येतीछु बन वून' और 'पोज़ आपुज़' शीर्षक से तीन ग्राम्य-नाटक लिखे तथा 'कनी शेछे, मनटीनी लेअी

पॉज़ू' तथा और कई नाटक लिखे, जो कश्मीरी लोक-शैली पर आधारित हैं। कुछ समय पहले ही गुलाम रसूल भगत्यार ने अपने लोक-नाटकों का संग्रह प्रकाशित किया है, जिसका शीर्षक है –''सिवित किना सरकारी''

मोती लाल क्यूम ने नाटक लिखना अपनी आयु की अग्रिम-अवस्था में आरम्भ किया था। उसने पहले हिन्दी में लिखना आरम्भ किया, परन्तु बाद में उसने कश्मीरी भाषा में भी श्रेष्ठ नाटक रचे हैं। अब तक उसके आठ नाटक संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं, जिनमें 'तुनोव, छ़ाय लल बो द्रयास लोल रे, नाटक तुचे' और तोता ते ऐना नाटक पुरस्कृत भी हो चुके हैं। उसके 'डख येली चलन' हिन्दी में अनूदित हो जाने के बाद नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा द्वारा 'भाण्ड दुहाई' शीर्षक से प्रस्तुत करने के बाद अब तक दिल्ली, भोपाल, कलकत्ता तथा अन्य नगरों में 34 बार मंचित भी किया जा चुका है।

गुलाम रसूल सन्तोष भी कवि और नाटककार था। उसने भी पहले आकाशवाणी कश्मीर के लिये कुछ रूपक लिखे और बाद में उसने उन्हीं को रंगमंचीय रूप देकर अपनी नाट्य कुशलता का परिचय दिया। उसके दो नाटक 'अकानन्दुन तथा बुत ता बुलडोज़र' मञ्चित भी हो चुके हैं।

राधाकृष्ण बरारू ने लोकशैली में 'याहू' और 'रेशीवॉर' दो नाटक लिखे जो दोनों कश्मीरी भाषा में हैं। अशोक काक ने कुछ समय पहले 'सथ सोदुर' शीर्षक से एक नाटक संग्रह प्रकाशित किया था। कुछ समय तक उसने इनका सफल मंचन भी करवाया था। बीसवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में कश्मीरी नाट्य-रचना में चार प्रवृत्तियां (या शैलियां) प्रबल रूप से सामने आई थीं जो इस प्रकार हैं– (1) संगीत-नाटक शैली–जैसे बोम्बुर यवर ज़ाल तथा वितस्ता (2) लोक-नाट्य शैली मनज़िल निकू, हरम खानुक, ऐना, मांनगई, मनटिनी लेअी पानज़ू इत्यादि (3) प्रयोगात्मक नाटक शैली–बुत ता बुलडोज़र, लल बो द्रयास लोलरे, नाटुक करिवे बन्द और चार्य पॅथर (4) हास्य-व्यंग्य तथा सामाजिक विषय शैली प्रधान-चपाथ, ग्राण्ड रिहर्सल, कने शेछय् तथा रोपई रन्द इत्यादि।

1989 ई० में घाटी में उग्रवाद के आने से नाट्य-रचना और नाट्य-मंचन को गहरा धक्का लगा। 1990 ई० में जब घाटी से कश्मीरी पण्डितों का सामूहिक पलायन आरम्भ हुआ तो कई प्रसिद्ध नाटककार तथा नाट्य-रंगकर्मी भी उस पलायन में सम्मिलित होने को विवश हो गए और भारत के विभिन्न नगरों में बिखरकर इधर-उधर अपना आश्रय ढूंढ़ने लगे। इस स्थिति को यदि कश्मीरी नाट्य-रचना का पतन

काल कहा जाए तो समीचीन होगा। अपनी 70 वर्षीय यात्रा में कश्मीरी नाट्य-रचना कार्य ने अपना उत्थान भी देखा और पतन भी। इस अवधि में कुछ उच्चकोटि के नाटक हिन्दी में अनूदित भी हुए। अब तक पच्चीस सम्पूर्ण रंगमंचीय कश्मीरी नाटक और तीन एकांकी नाटकों के संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। दुर्भाग्य से गत शताब्दी में सभी रंगमंचीय नाटक न तो प्रकाशित किये जा सके थे और न ही दयानतदारी के साथ सम्भाले ही जा सके थे। सम्भवत: घाटी में उस समय न तो नाटक खरीद कर पढ़ने वाले पाठक थे और न ही नियमित रंगमंचीय गतिविधियां ही प्रचलित थीं।

यह तथ्य सर्वविदित है कि नाट्य-रचना एक दुसाध्य एवं कठिन कार्य है। नाटक लिखते समय एक नाटककार को प्रत्येक घटना और पात्रों की मन: स्थिति के साथ जीकर उनसे प्राप्त अनुभूतियों को अपने भीतर खपा-पचाकर ही लिखने का उपक्रम करना चाहिए। यदि वह पात्रों की भूमिका का अभिनय करना नहीं जानता है और न ही उनके वार्तालाप की रची जाने वाली पंक्तियां सुगमता से बोल सकता है तो वह अपना यथेष्ट प्रभाव उत्पन्न करने में सफल नहीं हो सकता। परिणामत: उसके भीतर एक प्रकार का विचित्र अपराध बोध बना रहता है। तब वह साथ ही रंगमंची कलाकारों के वर्ग की खोज में ही रहता है। इतना ही नहीं वह अभिनीत होते हुए अपने नाटक के दर्शकों की खोज में ही रहता है। वास्तव में किसी नाटक के मंचित होने के बिना उसकी सफलता का मूल्यांकन करना भी कठिन हो जाता है। एक नाटककार को अपने नाटक रचना की लम्बी यात्रा तय करके ही रंगकर्मी कलाकारों को उसके मंचन के लिए आकर्षित करना पड़ता है ताकि दर्शक उसे देखकर उसकी कला के सौन्दर्य से आनन्द विभोर हो सकें।

कश्मीरी भाषा 8/9 शताब्दी से वहां की जनता की बोलचाल की भाषा है। इसकी अनेक पाण्डुलिपियां कई स्थानों पर पूर्णतया सुरक्षित हैं। यद्यपि यह भाषा भारतीय संविधान के आठवें अनुच्छेद की सूची में छटे स्थान पर है तो भी स्वतन्त्रता प्राप्ति के 59 वर्षों के बाद भी इसे न तो शिक्षा का माध्यम बनाया गया और न ही यह विद्यालयीय स्तर पर सभी कक्षाओं में एक विषय के रूप में पढ़ाई जाती है। इससे बढ़कर और क्या विडम्बना हो सकती है। कश्मीर घाटी के सभी दैनिक समाचारपत्र अंग्रेजी और उर्दू भाषाओं में तो प्रकाशित हो रहे हैं। जबकि कश्मीरी भाषा में एक भी समाचारपत्र नहीं निकलता है। राज्य की कला, संस्कृति, और भाषा अकैडमी संगीत और ललित कलाओं के विद्यालय जम्मू और श्रीनगर दोनों स्थानों में चलाती तो है परन्तु इनमें से एक में भी नाट्य-कला का बाकायदा प्रशिक्षण देने का प्रबन्ध नहीं है।

कुछ वर्षों से कश्मीर में छदम युद्ध का दौर चल रहा है, जिसके द्वारा कश्मीर की संस्कृति और आचार-विचार को नष्ट करने का दुश्चक्र चलाया जा रहा है। आजकल कश्मीर में न तो कोई कलाकार रह गया है और न ही कोई रंग कर्मियों का समूह तथा न ही नाटकों के पाठक ही रह गए हैं। ऐसी स्थिति में नाटककार किसके लिए अपने नाटकों की रचना करेंगे। उधर सरकार भी इच्छुक कलाकारों एवं रंगकर्मियों के प्रशिक्षण के लिए न तो कोई अभीष्ट प्रबन्ध कर रही है और न ही यथेष्ट रुचि ले रही है। इसलिए न जाने यह कला समाप्त होने के लिए कितना समय लेगी? यह तो ईश्वर ही जानता है। फिर जब मीडिया के कार्यक्रम भी परम्परा से चली आ रही ग्रामीण संस्कृति की जड़ों पर ही प्रहार करने को उतारू हों तो क्या हमारी संस्कृति पर आधारित लोक-मंच बच पाएगा। जब तक दूरदर्शन और आकाशवाणी मध्यम स्तर के लेखकों के लिए पैसा खर्च करके उन्हें आकर्षित करते रहेंगे तब तक लोक-कला का तथाकथित रूप बना भी रह सकेगा या नहीं? संदेह है। ऐसी स्थिति में रंगमंच के लिए लिखना भूतकाल की बात ही हो जाएगी।

०००